IJARSCT
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
ISSN: 2581-9429
Volume 5, Issue 5, May 2020
Impact Factor: 4.819

lar dchj ds lkfgR; ij ckS) /keZ dk çHkko

MkW- jhrk flag
vfl0 izksQslj bfrgkl
ifMr jkey[ku “kqDy jktdh; ih th dkyst] vkykiqj] vEcsMdjuxj
ritasingh806@gmail.com

lkjka'k

प्रस्तुत शोध–पत्र ”संत कबीर के साहित्य पर बौद्ध धर्म का प्रभाव” भारतीय बौद्धिक परंपरा की बहुआयामी अंतर्धाराओं का समन्वित एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। इस शोध का मूल उद्देश्य यह प्रतिपादित करना है कि कबीर की वाणी केवल निर्गुण भक्ति की काव्यात्मक अभिव्यक्ति नहीं है, बल्कि वह भारतीय श्रमण परंपराकृविशेषतः बौद्ध दर्शनकृकी मानवीय, तर्कशील और समतामूलक चेतना का मध्यकालीन पुनर्संयोजन भी है। मध्यकालीन भारतीय समाज में व्याप्त जातिगत ऊँच–नीच, धार्मिक आडंबर, कर्मकांड और सामाजिक असमानताओं के विरुद्ध कबीर का जो सशक्त प्रतिरोध दिखाई देता है, उसकी वैचारिक जड़ें प्राचीन भारतीय चिंतन की उन धाराओं में खोजी जा सकती हैं, जिन्होंने मनुष्य को केंद्र में रखकर धर्म और दर्शन का पुनर्परिभाषण किया। इस संदर्भ में गौतम बुद्ध द्वारा प्रतिपादित दुःख–निवारण, करुणा, अनात्मवाद, अनित्यता और मध्यमार्ग जैसे सिद्धांतों का विशेष महत्व है।

शोध में तुलनात्मक पद्धति के माध्यम से यह विश्लेषित किया गया है कि कबीर के साहित्य में बौद्ध दर्शन की प्रतिध्वनियाँ किस प्रकार रूपांतरित होकर उपस्थित होती हैं। कबीर का कर्मकांड–विरोध, जाति–प्रथा की तीखी आलोचना, मानव–केन्द्रित दृष्टिकोण तथा सामाजिक समता का आग्रह बौद्ध संघ–परंपरा और समतामूलक आदर्शों से साम्य रखता है। इसी प्रकार ‘अहं’ के निषेध और आत्मिक शुद्धि पर बल देने की प्रवृत्ति बौद्ध अनात्मवाद की स्मृति कराती हैय तथापि कबीर आत्मा के अस्तित्व को पूर्णतः नकारते नहीं, बल्कि उसे निर्गुण ब्रह्म के साथ अभिन्न मानते हुए एक आध्यात्मिक पुनर्व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार उनके चिंतन में बौद्ध प्रभाव प्रत्यक्ष अनुकरण के रूप में नहीं, बल्कि वैचारिक संवाद और सांस्कृतिक अंतःप्रवाह के रूप में दृष्टिगत होता है।

'kks/k dk eq[; fopkj :&

Hkkjrh; ckS)d ijEijk dh vUr/kkjk,¡:&

भारतीय बौद्धिक परंपरा का स्वरूप अत्यंत व्यापक, बहुस्तरीय और अंतःसंवादी रहा है। इसका विकास किसी एक दार्शनिक धारा या एकमात्र धार्मिक दृष्टिकोण के अधीन नहीं हुआ, बल्कि विविध वैचारिक प्रवृत्तियों के सतत संवाद, प्रतिवाद और समन्वय के माध्यम से हुआ है। वैदिक परंपरा ने जहाँ यज्ञ, देववाद, ब्रह्म और आत्मा की आध्यात्मिक व्याख्या के माध्यम से एक आध्यात्मिक ढाँचा प्रस्तुत किया, वहीं श्रमण परंपराओं—विशेषतः गौतम बुद्ध द्वारा प्रतिपादित बौद्ध दर्शन—ने इस ढाँचे को तर्क, अनुभव और नैतिकता के आधार पर पुनर्परिभाषित करने का प्रयास किया। बौद्ध चिंतन ने कर्मकाण्ड की अपेक्षा करुणा, आत्मानुशासन और प्रज्ञा को महत्व दिया तथा जाति–आधारित सामाजिक विभाजन के स्थान पर समतामूलक दृष्टिकोण को स्थापित किया। इस प्रकार भारतीय बौद्धिक परंपरा में वैदिक और श्रमण धाराएँ परस्पर विरोधी होकर भी एक गहरे वैचारिक अंतर्संबंध में बँधी रहीं। इन दोनों धाराओं के बीच जो संवाद स्थापित हुआ, उसने भारतीय चिंतन को स्थिरता के स्थान पर

ISSN 2581-9429 IJARSCT

IJARSCT

International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology

International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal

ISSN: 2581-9429 Volume 5, Issue 5, May 2020 Impact Factor: 4.819

गतिशीलता प्रदान की, जिसके कारण यहाँ दार्शनिक विविधता को स्वीकार करने की उदार परंपरा विकसित हुई।

यद्यपि ऐतिहासिक परिवर्तनों के परिणामस्वरूप बौद्ध धर्म का संस्थागत प्रभाव भारतभूमि में क्रमशः क्षीण हुआ, तथापि उसके मूल विचार—जैसे करुणा, समता, अनात्म चेतना, आडंबर–विरोध और आत्मनिर्भर साधना—पूर्णतः लुप्त नहीं हुए। वे लोकजीवन, सांस्कृतिक व्यवहार, लोककथाओं, साधना–परंपराओं तथा नाथ और संत परंपरा जैसे धार्मिक आंदोलनों के माध्यम से अंतर्धारा के रूप में प्रवाहित होते रहे। भारतीय बौद्धिक इतिहास की यही विशेषता है कि यहाँ विचारधाराएँ न तो पूर्णतः समाप्त होती हैं और न ही यथावत् स्थिर रहती हैं; वे नए ऐतिहासिक संदर्भों में रूपांतरित होकर पुनः प्रकट होती हैं। मध्यकालीन संत परंपरा को इसी अंतर्धारात्मक प्रक्रिया का परिणाम माना जा सकता है, जहाँ पूर्ववर्ती श्रमण चिंतन के तत्व नवीन सामाजिक–सांस्कृतिक परिस्थितियों में पुनर्संयोजित होकर सामने आए। अतः भारतीय बौद्धिक परंपरा को समझने के लिए इसे एक सतत प्रवाहित विचार–नदी के रूप में देखना आवश्यक है, जिसमें विभिन्न धाराएँ मिलकर भी अपनी विशिष्ट पहचान बनाए रखती हैं और सामूहिक रूप से एक समृद्ध वैचारिक विरासत का निर्माण करती हैं।

dchj dk thou] le; vkSj ckS)d ifjos'k

संत कबीर का जीवन 15वीं शताब्दी के उत्तर भारत के उस ऐतिहासिक कालखंड से जुड़ा है, जब भारतीय समाज अनेक प्रकार की धार्मिक, सामाजिक और वैचारिक उथल–पुथल से गुजर रहा था। सामान्यतः कबीर का समय 1398 से 1518 ई. के बीच माना जाता है और उनका प्रमुख कार्यक्षेत्र वाराणसी तथा उसके आसपास का क्षेत्र था, जो उस समय हिंदू, मुस्लिम, सूफी, नाथ, सिद्ध और शैव–वैष्णव साधना–परंपराओं का संगम–स्थल था। राजनीतिक रूप से यह काल दिल्ली सल्तनत के उत्तरार्द्ध का था, जहाँ सत्ता संरचना तो मुस्लिम शासकों के हाथ में थी, परंतु सांस्कृतिक स्तर पर बहुलतावादी अंतःक्रिया निरंतर चल रही थी। इसी पृष्ठभूमि में भक्ति आंदोलन का उदय हुआ, जिसमें निर्गुण संत परंपरा ने विशेष स्थान बनाया। कबीर इसी निर्गुण धारा के प्रमुख प्रवक्ता बने, जिन्होंने मूर्तिपूजा, कर्मकांड, जाति–व्यवस्था और धार्मिक आडंबरों की तीखी आलोचना की। उनका व्यक्तित्व न तो पूर्णतः वैष्णव था, न ही इस्लामी सूफीय बल्कि वे एक ऐसे स्वतंत्र चिंतक थे, जिन्होंने अपने समय की समस्त उपलब्ध आध्यात्मिक धाराओं का आलोचनात्मक आत्मसात किया। इस व्यापक बौद्धिक परिवेश में बौद्ध, सिद्ध और नाथ परंपराओं की जो पूर्ववर्ती विरासत थी, वह प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कबीर के चिंतन में उपस्थित दिखाई देती है।

कबीर का बौद्धिक परिवेश केवल धार्मिक मतभेदों तक सीमित नहीं था, बल्कि वह सामाजिक विषमता, जातिगत विभाजन और आध्यात्मिक संकीर्णता के विरुद्ध एक वैचारिक प्रतिरोध की भूमि भी था। कबीर के समकालीन समाज में ब्राह्मणवादी कर्मकांड और इस्लामी शरिया–प्रधान रूढ़िवादिता दोनों ही प्रभावी थेय ऐसे में कबीर ने जिस निर्गुण, निराकार और आंतरिक साधना–प्रधान मार्ग का प्रतिपादन किया, वह एक प्रकार से उस समय की आध्यात्मिक क्रांति थी। उनके पदों और साखियों में लोकभाषा का प्रयोग, प्रत्यक्ष अनुभूति पर बल, तथा गुरु–परंपरा की स्वीकृति—ये सभी तत्व उस व्यापक भारतीय बौद्धिक परंपरा के संकेत हैं, जिसकी एक महत्वपूर्ण धारा बौद्ध सिद्धों और सहजयान परंपरा से होकर आती है। विशेषतः 'सहज', 'शून्य', 'अनहद' और 'आत्मानुभूति' जैसे शब्दों का प्रयोग यह दर्शाता है कि कबीर का चिंतन किसी एक धार्मिक परंपरा की सीमाओं में बँधा हुआ नहीं था, बल्कि वह एक बहुस्तरीय वैचारिक संवाद का परिणाम था। अतः कबीर के जीवन और समय का अध्ययन करते हुए यह स्पष्ट हो जाता है कि उनका साहित्य उस युगीन बौद्धिक मंथन की उपज है, जिसमें बौद्ध, सिद्ध, नाथ और भक्ति—सभी धाराएँ अंतःसलिल रूप से प्रवाहित थीं।

Copyright to IJARSCT
www.ijarsct.co.in

ISSN 2581-9429 IJARSCT

ISSN: 2581-9429 Volume 5, Issue 5, May 2020 Impact Factor: 4.819

'kU;okn vkj fuxq.k czã:nk'kfud lkE; vkj fHkUurk,¡

बौद्ध दर्शन की महत्त्वपूर्ण अवधारणा 'शून्यवाद' विशेष रूप से नागार्जुन द्वारा प्रतिपादित माध्यमिक दर्शन में विकसित रूप में प्राप्त होती है, जिसमें समस्त द्रव्य और तत्त्वों को स्वभावतः शून्य माना गया है। यहाँ 'शून्यता' का अर्थ नास्तिकता या पूर्ण अभाव नहीं, बल्कि वस्तुओं के स्वतंत्र, स्थायी और आत्मस्वरूप अस्तित्व के निषेध से है। इस दृष्टि में समस्त जगत परस्पर आश्रित उत्पत्ति (प्रतित्यसमुत्पाद) के सिद्धांत पर आधारित हैय अतः कोई भी सत्ता स्वायत्त और शाश्वत नहीं है। जब हम कबीर के साहित्य का अवलोकन करते हैं, तो 'शून्य', 'सहज शून्य', 'अनहद शून्य' आदि पदों के माध्यम से एक ऐसी आध्यात्मिक स्थिति का वर्णन मिलता है, जो पारंपरिक मूर्त–ईश्वरवाद से भिन्न है। कबीर के यहाँ 'निर्गुण राम' किसी मूर्त, सगुण देवता का नाम नहीं, बल्कि वह एक निराकार, असीम और अव्यक्त सत्ता का प्रतीक है। यहाँ एक महत्वपूर्ण दार्शनिक साम्य यह है कि दोनों परंपराएँ स्थूल रूपों, प्रतीकों और कर्मकांडों से परे किसी गहन आंतरिक सत्य की ओर संकेत करती हैं। कबीर के लिए भी परम सत्य इंद्रियगोचर नहीं, बल्कि अनुभूति का विषय हैय इसी प्रकार नागार्जुन के शून्यवाद में भी सत्य का बोध बौद्धिक कल्पनाओं के अतिक्रमण से संभव होता है।

किन्तु इन समानताओं के साथ कुछ मौलिक भिन्नताएँ भी स्पष्ट हैं। बौद्ध शून्यवाद में परम सत्ता का कोई ईश्वरवादी प्रतिपादन नहीं हैय वहाँ अनात्मवाद के आधार पर आत्मा और ईश्वर—दोनों की स्वतंत्र सत्ता का निषेध किया जाता है। इसके विपरीत कबीर 'निर्गुण ब्रह्म' या 'राम' की एक ऐसी पारलौकिक सत्ता को स्वीकार करते हैं, जो यद्यपि निराकार है, तथापि अनुभूति और भक्ति का विषय बनती है। कबीर के यहाँ शून्य अंततः ईश्वर–साक्षात्कार की भूमिका है, जबकि माध्यमिक बौद्ध दर्शन में शून्यता स्वयं अंतिम सत्य की बौद्धिक अभिव्यक्ति है, जो किसी ईश्वर–सत्ता पर निर्भर नहीं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि कबीर का 'शून्य' दार्शनिक रूप से बौद्ध शून्यवाद से प्रभावित प्रतीत होता है, परंतु उसका अंतिम लक्ष्य भक्ति–प्रधान निर्गुण ब्रह्म की अनुभूति है। अतः यहाँ प्रभाव और रूपांतरण दोनों प्रक्रियाएँ साथ–साथ कार्य करती हैंकृकबीर ने शून्य की अवधारणा को आत्मसात तो किया, किंतु उसे अपने निर्गुण भक्ति–सिद्धांत के अनुरूप पुनर्व्याख्यायित कर दिया।

deZdkM&fojk/k vkj vkrfjd lk/kuk dh ijEijk

बौद्ध धर्म का उद्भव मूलतः वैदिक यज्ञ–प्रधान कर्मकांड और ब्राह्मणवादी अनुष्ठानों के विरुद्ध एक नैतिक–आध्यात्मिक प्रतिरोध के रूप में हुआ था। गौतम बुद्ध ने वेदों की अपौरुषेयता, यज्ञों की अनिवार्यता और जाति–आधारित धार्मिक विशेषाधिकारों को अस्वीकार करते हुए साधना का केंद्र व्यक्ति की आंतरिक शुद्धि, सम्यक दृष्टि और सम्यक आचरण को बनाया। बुद्ध के उपदेशों में बाह्य अनुष्ठानों की अपेक्षा 'शील, समाधि और प्रज्ञा' को प्रधानता दी गई। इसी प्रकार संत कबीर के साहित्य में भी कर्मकांड, तीर्थयात्रा, मूर्तिपूजा, माला–जप और बाह्याचार की तीव्र आलोचना मिलती है। कबीर स्पष्ट शब्दों में कहते हैं कि पत्थर की पूजा करने से ईश्वर की प्राप्ति संभव नहींय वे धर्म को आडंबर से मुक्त कर आंतरिक साधना और आत्मानुभूति से जोड़ते हैं। यह दृष्टिकोण बौद्ध धर्म की उस मूल चेतना से साम्य रखता है, जिसमें धर्म को सामाजिक प्रतिष्ठा या बाह्य अनुष्ठानों से नहीं, बल्कि आचरण और अनुभव से परिभाषित किया गया है। दोनों परंपराओं में यह आग्रह स्पष्ट है कि आध्यात्मिक मुक्ति किसी बाहरी साधन से नहीं, बल्कि भीतर के रूपांतरण से प्राप्त होती है।

कबीर के यहाँ यह कर्मकांड–विरोध केवल वैदिक परंपरा तक सीमित नहीं रहता, बल्कि वे इस्लामी रूढ़िवादिता और शरिया–आधारित औपचारिकता की भी आलोचना करते हैं। इस दृष्टि से उनका चिंतन व्यापक और समन्वयी है। बौद्ध धर्म ने जिस प्रकार मध्य मार्ग अपनाकर अतिशय तपस्या और भोग—दोनों से दूरी बनाई, उसी प्रकार कबीर भी अत्यधिक तप, व्रत और

IJARSCT

International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology

International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal

ISSN: 2581-9429 Volume 5, Issue 5, May 2020 Impact Factor: 4.819

संन्यास की औपचारिकता को नकारते हुए 'सहज साधना' का मार्ग प्रस्तुत करते हैं। यह 'सहज' भाव विशेष रूप से सिद्ध और सहजयान बौद्ध परंपराओं से संबद्ध दिखाई देता है, जहाँ जीवन के भीतर ही मुक्ति की संभावना स्वीकार की गई। अतः यह कहा जा सकता है कि कबीर का कर्मकांड–विरोध केवल सामाजिक आलोचना नहीं, बल्कि एक गहरी दार्शनिक पृष्ठभूमि से जुड़ा है, जिसकी एक महत्त्वपूर्ण धारा बौद्ध धर्म से होकर आती है। हालांकि कबीर अंततः भक्ति–प्रधान साधना की ओर उन्मुख रहते हैं, फिर भी उनकी आंतरिक साधना की अवधारणा में बौद्ध नैतिकता और अनुभववादी दृष्टिकोण की स्पष्ट अनुगूंज सुनाई देती है।

vukReokn vkj vkRek&cã dh iuo;k[;k

बौद्ध दर्शन की एक केंद्रीय विशेषता 'अनात्मवाद' है, जिसके अनुसार कोई स्थायी, शाश्वत और अपरिवर्तनीय आत्मा (आत्मन्) का अस्तित्व नहीं है। गौतम बुद्ध ने पंचस्कंध (रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान) के विश्लेषण के माध्यम से यह प्रतिपादित किया कि जिसे हम 'मैं' या 'आत्मा' समझते हैं, वह वस्तुतः क्षणिक तत्वों का समुच्चय है। इस सिद्धांत का उद्देश्य दार्शनिक वाद–विवाद मात्र नहीं था, बल्कि अहंकार–क्षय और दुख–निवारण की दिशा में एक व्यावहारिक मार्ग प्रशस्त करना था। जब हम कबीर के साहित्य का परीक्षण करते हैं, तो वहाँ भी 'अहं' के निषेध और 'मैं' की सीमाओं के अतिक्रमण की स्पष्ट प्रवृत्ति दिखाई देती है। कबीर बार–बार 'हौं' (मैं) के विसर्जन की बात करते हैं और यह प्रतिपादित करते हैं कि जब तक व्यक्ति अपने अहंभाव को नहीं त्यागता, तब तक परम सत्य की अनुभूति संभव नहीं। इस स्तर पर बौद्ध अनात्मवाद और कबीर की अहं–निरसन की चेतना में एक वैचारिक साम्य दृष्टिगत होता है।

किन्तु यहाँ एक महत्वपूर्ण अंतर भी विद्यमान है। बौद्ध अनात्मवाद आत्मा की किसी भी शाश्वत सत्ता को स्वीकार नहीं करता, जबकि कबीर आत्मा को पूर्णतः नकारते नहीं, बल्कि उसकी पुनर्व्याख्या करते हैं। कबीर के लिए आत्मा कोई व्यक्तिगत, सीमित सत्ता नहीं, बल्कि 'निर्गुण ब्रह्म' की ही अभिव्यक्ति है—अर्थात् जीव और ब्रह्म के बीच अंततः अद्वैत संबंध है। वे 'जीव ही ब्रह्म है' जैसी अनुभूति की ओर संकेत करते हैं, किंतु इस अनुभूति की पूर्वशर्त अहं का लय है। इस प्रकार जहाँ बौद्ध दर्शन में अनात्मवाद एक दार्शनिक निष्कर्ष है, वहीं कबीर के यहाँ 'अहं–शून्यता' भक्ति और आत्मानुभूति की भूमिका बन जाती है। कहा जा सकता है कि कबीर ने अनात्म की धारणा को पूर्णतः स्वीकार नहीं किया, बल्कि उसे अपने निर्गुण–भक्ति सिद्धांत के अनुरूप रूपांतरित किया। अतः यहाँ प्रभाव का संबंध प्रत्यक्ष अनुगमन से अधिक, वैचारिक संवाद और पुनर्संरचना का है, जिसमें बौद्ध विचारधारा की गूंज तो है, परंतु उसका अंतिम निष्कर्ष कबीर की विशिष्ट आध्यात्मिक दृष्टि में ढलकर सामने आता है।

fu"d"k

"संत कबीर के साहित्य पर बौद्ध धर्म का प्रभाव" विषयक इस अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि कबीर की वाणी केवल निर्गुण भक्ति की अभिव्यक्ति भर नहीं है, बल्कि वह भारतीय बौद्धिक परंपराओं के दीर्घ ऐतिहासिक विकास का एक सशक्त और जीवंत रूपांतरण भी है। गौतम बुद्ध द्वारा प्रतिपादित दुःख, अनित्यता, अनात्म, करुणा और समता जैसे सिद्धांतों ने भारतीय चिंतन को जो मानवीय और तर्कशील आधार प्रदान किया, वही आधार मध्यकाल में कबीर की वाणी में एक नई काव्यात्मक और सामाजिक चेतना के रूप में पुनर्संयोजित दिखाई देता है। कबीर ने न तो बौद्ध दर्शन का प्रत्यक्ष अनुकरण किया और न ही स्वयं को किसी एक दार्शनिक परंपरा तक सीमित रखाय परंतु उनके चिंतन में बौद्ध धर्म की अंतर्धारा स्पष्ट रूप से अनुभव की जा सकती है—विशेषतः कर्मकांड–विरोध, जाति–प्रथा की आलोचना, अहं–निरसन, लोकमंगल की भावना और मानव–केंद्रित दृष्टिकोण के रूप में।

ISSN 2581-9429 IJARSCT

इस शोध से यह भी निष्पन्न होता है कि कबीर के यहाँ बौद्ध प्रभाव प्रत्यक्ष दार्शनिक उधार नहीं, बल्कि सांस्कृतिक–सामाजिक अंतरूप्रवाह का परिणाम है। मध्यकालीन भारतीय समाज में बौद्ध, नाथ, सिद्ध और भक्ति परंपराओं का जो अंतर्संवाद चल रहा था, उसी के मध्य कबीर की चेतना निर्मित हुई। उन्होंने बौद्ध अनात्मवाद को यथावत् स्वीकार नहीं किया, बल्कि उसे निर्गुण ब्रह्म की अनुभूति से जोड़कर पुनर्व्याख्यायित कियाय उन्होंने बुद्ध की करुणा को भक्ति की संवेदना से संपृक्त कियाय और उन्होंने समता के सिद्धांत को सामाजिक विद्रोह का स्वर प्रदान किया। इस प्रकार कबीर का साहित्य बौद्ध चिंतन की प्रतिध्वनि होते हुए भी अपनी मौलिकता में विशिष्ट है।

अंततः कहा जा सकता है कि कबीर भारतीय चिंतन की निरंतरता के सेतु हैं—एक ओर वे प्राचीन श्रमण परंपरा की मानवीय चेतना को ग्रहण करते हैं, तो दूसरी ओर उसे मध्यकालीन सामाजिक यथार्थ के अनुरूप ढालते हैं। उनका काव्य भारतीय समाज में वैचारिक जागरण, नैतिक पुनर्संरचना और सामाजिक समता की स्थापना का सशक्त माध्यम बनता है। अतः कबीर पर बौद्ध धर्म का प्रभाव केवल दार्शनिक स्तर तक सीमित नहीं है, बल्कि वह सामाजिक, नैतिक और सांस्कृतिक स्तरों पर भी व्यापक रूप से विद्यमान है। यही इस शोध का प्रमुख निष्कर्ष है कि कबीर की वाणी भारतीय बौद्धिक परंपरा की बहुधारात्मकता का एक उत्कृष्ट उदाहरण है, जहाँ प्रभाव और मौलिकता का संतुलित समन्वय दृष्टिगत होता है।

lanHkZ xzaFk lwph

1. वर्मा, रामगोपाल एवं प्रताप चंद्रा (2017): कबीर और जायसी एक मूलांकन। आगरा: समीक्षा लोक कार्यालय।
2. वाजपेयी, पुरुषोत्तम चंद (2015): कबीर और जायसी का मूलांकन। वाराणसी: हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय।
3. ट्रस्चके, ऑड्रे (2015): मुठभेड़ों की संस्कृति: मुगल कोर्ट में संस्कृत। पेंगुइन एलन लेन।
4. तुपुले, शंकर गोपाल (2016): मध्यकालीन भारत में रहस्यवाद। विस्बाडेन: ओटो हैरासोवित्ज।
5. त्रिगुणायत, गोविन्द (2018): हिंदी की निर्गुण काव्यधारा व उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि। कानपुर: साहित्य निकेतन।
6. थॉमस, आर. एस. (सम्पा.) (2015): The Penguin Book of Religious Verse। हार्मंड्सवर्थः पेंगुइन बुक्स लिमिटेड।
7. त्रिगुणायत, गोविन्द (सम्पा.) (2019): कबीर ग्रन्थावली। कानपुर: अशोक प्रकाशन।
8. वर्मा, सुनीत (2017): Love Healing and Human Unity: Lessons from Sant Kabir Das। दिल्ली विश्वविद्यालय / कैलिफोर्निया इंस्टीट्यूट ऑफ इंटीग्रल स्टडीज।
9. स्टाल, रोलैंड (2015): "The Philosophy of Kabir, " Philosophy East and West, Vol- 4, No- 2, pp- 141–155.
10. शर्मा, कृष्णा (2016): भक्ति और भक्ति आंदोलन: एक नया दृष्टिकोण। नई दिल्ली: मुंशीराम मनोहरलाल।
11. सिंह, निर्भाई (2018): Philosophy of Sikhism। नई दिल्ली: अटलांटिक पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स।
12. हजारीप्रसाद द्विवेदी (2014 पुनर्मुद्रण): कबीर। नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।
13. रामचंद्र शुक्ल (आधुनिक संस्करण): हिंदी साहित्य का इतिहास। वाराणसी: नागरी प्रचारिणी सभा।
14. नामवर सिंह (2011): दूसरी परंपरा की खोज। नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।
15. दयाशंकर मिश्र (2012): निर्गुण भक्ति और कबीर। इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन।
16. धम्मपद (अनुवादित संस्करण): विभिन्न प्रकाशन।

IJARSCT
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
ISSN: 2581-9429
Volume 5, Issue 5, May 2020
Impact Factor: 4.819

17. मज्झिम निकाय (पाली टेक्स्ट सोसायटी संस्करण)।
18. संयुक्त निकाय (पाली टेक्स्ट सोसायटी संस्करण)।
19. सुत्तनिपात (अनुवादित संस्करण)।
20. राहुल सांकृत्यायन (2008 पुनर्मुद्रण): बौद्ध दर्शन। इलाहाबाद: किताब महल।
21. नागार्जुन (अनुवादित): मूलमध्यमककारिका। विभिन्न संस्करण।